International Journal of Applied Research 2018; 4(1): 51-53

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2018; 4(1): 51-53
www.allresearchjournal.com
Received: 16-11-2017
Accepted: 28-12-2017

डॉ. रंजीता गोयल
पूर्व–शोधार्थी, विश्वविद्यालय समाजशास्त्र विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ. रंजीता गोयल
पूर्व–शोधार्थी, विश्वविद्यालय समाजशास्त्र विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा, बिहार, भारत

विद्यालयों में अध्यापकों की शिक्षण के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. रंजीता गोयल

सारांश
माध्यमिक शिक्षा समूची शिक्षा प्रणाली की रीढ की हड्डी के समान है। माध्यमिक शिक्षा राष्ट्र के तकनीकी तथा सांस्कतिक जीवन पर विशेष प्रभाव डालती है। यह शिक्षा उन नवयुवकों को शिक्षित करती है जो देश के समाजिक निर्माण तथा आर्थिक विकास में प्रभावशाली हो सके। ऐसी स्थिति में माध्यमिक स्तर के अध्यापकों की भूमिका के निर्वाह की अनिवार्यता स्वतः ही सुस्पष्ट हो जाती है। अध्यापकों की भूमिका निर्वाह प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से उनके अध्यापन के प्रति अभिवृत्ति पर निर्भर करता है।

मूल शब्दः– विद्यालयों, शिक्षण, अभिवृत्ति, तुलनात्मक अध्ययन

प्रस्तावना
आधुनिक जगत में ज्ञान, तकनीकी एवं सूचना क्रान्ति के विकास के साथ–साथ सामाजिक मूल्यों एवं मान्यताओं में भारी फेरबदल हुआ है, जिसके चलते आज मानवीय समाज अनेक पर्यावरणीय तथा मनोसामाजिक समस्याओं से घिरा हुआ है। ऐसे में शिक्षा, शिक्षक और शिक्षार्थी जगत भी अछूता नहीं है, परन्तु प्राचीन काल में भारतीय सभ्यता व विश्व की अनेक सभ्यताएं धार्मिक प्रवृत्ति से समृद्ध थी जिसमें धर्म को आधार मानकर शिक्षा दी जाती थी। मनुष्य मात्र का सम्पूर्ण जीवन सांस्कृतिक चेतना एवं धार्मिक सहिष्णुता से संचालित होता था। इसके साथ – साथ आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, शैक्षिक ढ़ाँचे धार्मिक विचारधाराओं से सिंचित थे। जीवन का लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति था। अतः उस समय शिक्षक की भूमिका ईश्वर के रूप में थी। शिक्षक मोक्ष मार्ग का दाता तथा शिक्षा मोक्ष प्राप्ति का मार्ग थी। समाज के बदलते स्वरूप के साथ–साथ उसकी संस्कृति भी बदलती जा रही है। शिक्षा का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं रह गया है। प्राचीन काल में शिक्षक का स्थान सर्वोपरि था। अध्यापन करना उसका व्यवसाय नहीं अपितु जीवन का एक पवित्र लक्ष्य था। वह अपने विषय का विद्वान एवं भौतिक दृष्टि से निर्विघ्न व्यक्ति था। में, सबसे उपेक्षित है शिक्षा, शिक्षा जिससे किसी राष्ट्र का निर्माण होता है, विकास होता है, हमारा देश जो कभी विश्व गुरू था सभी विद्याओं में अग्रणी, विश्व के अन्य देशों से विद्यार्थी हमारे विख्यात गुरूकुलों– तक्षशिक्षा, नालंदा, विक्रमशिला आदि में विद्यार्जन करने आते थे। विभिन्न विद्याओं में अग्रणी होने की बात तो विश्व प्रसिद्ध इतिहासकार भी स्वीकार करते हैं। यहीं कारण है कि हमारा देश सोने की चिड़िया था, इसका प्रमाण देने की कोई आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। क्योंकि इतिहास ही सबसे बड़ा साक्षी है। जिसके अनुसार पहले मुस्लिमों ने, पुर्तगालियों, फ्रांसीसियों अन्य विदेशी आक्रांताओं ने किसी न किसी बहाने लूटा और अतं में अंग्रेजों ने तो यहीं आधिपत्य जमा लिया।

जिसके बाद उनको बाहर करने में हमारे देशभक्तों को अपने प्राणों से ही हाथ धोना पड़ा। शिक्षा के इस दयनीय दशा में पहुँचने के कारकों पर यदि विचार किया जाये तो– हमारी शिक्षा व्यवस्था को प्रथम हानि तो मुस्लिम आक्रमणकारियों ने ही पहुंचाई, जब उन्होंने हमारे गुरूकुलों को लूटा, पुस्तकालयों को अग्नि के समर्पित कर दिया, परन्तु अंग्रेज वो तो और भी धूर्त थे, ने तो हमारी उत्कृष्ट शिक्षा की जड़ों पर प्रहार किया जिसका प्रमाण है लार्ड मैकाले का ये कथन जो उन्होंने फरवरी 1835 में ब्रिटिश संसद के सामने कहा था, कि मैंने भारत के कोने–कोने की यात्रा की है और मुझे एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं दिखाई दिया, जो भिखारी हो या चोर हो। मैंने इस देश में ऐसी सम्पन्नता देखी, ऐसे ऊंचे नैतिक मूल्य देखे कि मुझे नहीं लगता कि जब तक हम इस देश की रीढ़ की हड्डी न तोड़ दें, तब तक इस देश को जीत पायेंगे। इसकी रीढ़ की हडडी हैः इसकी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत।

लार्ड मैकाले ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपनी शिक्षा नीति बनाई, जिसे आधुनिक भारतीय शिक्षा प्रणाली का आधार बनाया गया ताकि एक मानसिक रूप से गुलाम कोम तैयार किया जा सके,

क्योंकि मानसिक गुलामी, शारीरिक गुलामी से बढ़कर होती है। मेकाले की शिक्षा नीति 1947 तक निर्बाध रूप से जारी रही, आजादी के पश्चात भी हमने इसमें कोई परिवर्तन करना उचित नहीं समझा और यू ही चलने दिया। अंग्रेज अपनी इस नीति में पूर्णतया सफल रहे और हमारे देशवासियों को उन्होंने ऐसे चश्मे पहिना दिये जिनके माध्यम से आज हमें पाश्चात्य ज्ञान, पाश्चात्य विचारधारा, वेशभूषा, रहन–सहन सभी कुछ सुन्दर, उपयोगी दिखाई देता है। आज तक हमने अपनी शिक्षा प्रणाली में कोई मूलभुत बदलाव करने पर कोई विचार नहीं किया। यदि हम बदलाव या परिवर्तन सरकारी स्तर से प्रारम्भ करें तो सरकारी प्रभार सर्वप्रथम शिक्षा विभाग प्राय जिन मंत्रियों को सौंपा जाता है, उनकों शिक्षा का अ, ब, स, द भी पता नहीं होता, नीति निर्माण वही घिसी पिटी, या फिर विदेशों की नकल जो हमारी आवश्यकता या परिस्थितियों के अनुरूप बिल्कुल नहीं होती है। शिक्षक भी उसी वातावरण में शिक्षा प्राप्त कर शिक्षक बन जाता है, तो उससे यह अपेक्षा करना ही व्यर्थ है, निजी शिक्षण संस्थानों की आज बाढ़ आयी हुई है जिसके कारण येन – केन प्रकारेण तो शिक्षा दी जा रही है। इस हालात में शिक्षकों से सामाजिक एवं सांस्कृतिक बदलाव की क्या आशा की जा सकती है।

सरकारी स्कूलों के शिक्षक सरकारी नौकर बनने को विवश है और निजी क्षेत्र में वहां के प्रबंधन के वेतन भोगी सेवक, जहाँ उनसे पूर्ण वेतन पर हस्ताक्षर करा कर आधा अधूरा वेतन दिया जाता है। विद्यालयों में प्रवेश में मोटी धनराशि, परीक्षाओं में नकल कराया जाना आदि सामान्य सी प्रक्रिया है। प्राथमिक स्तर पर ही यदि देखे तो उपलब्ध नेट या किताबी आंकड़ों के अनुसार आज भी देश में 9503 स्कूल बिना शिक्षक के हैं। 122355 से अधिक विद्यालय में पांच कक्षाओं पर एक शिक्षक है। लगभग 42 हजार स्कूल भवन विहीन है और एक लाख से अधिक स्कूलों में भवन के नाम पर एक कमरा है। सरकारी स्कूलों में अधिकाशं प्रशिक्षित अध्यापक मासिक वेतन लेते हैं और रिश्वत के माध्यम से अपनी नियुक्ति ऐसे स्थान पर करवाते हैं। जहां कभी अचानक होने वाले निरीक्षण में न पकड़े जाएँ। शिक्षकों की नियुक्ति में गड़बड़ी, रिश्वत खुले आम व्याप्त है, इन सब व्यवस्थाओं के चलते शिक्षकों को पूर्ण समर्पित तथा कर्तव्य निष्ठ मान कर चलना कपोल कल्पना ही हो सकती है। यही कारण है कि टयूशन, परीक्षाओं में धन लेकर पास करा देना आदि प्रवृत्तियाँ आम है।

शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का एक सशक्त माध्यम है और शिक्षक समाज को सही गति एवं दिशा देने में सहायक होता है।

"विद्या विनय संपन्ने ब्राह्मणे गनि हस्तीन।" "विद्या विनय संपन्ने ब्राह्मणे गनि हस्तीन।" "विद्या विनय संपन्ने ब्राह्मणे गनि हस्तीन।" "विद्या विनय संपन्ने ब्राह्मणे गनि हस्तीन।" गुनि चौव श्रपाके च पण्डिता समदर्शिनः।। गुनि चौव श्रपाके च पण्डिता समदर्शिनः।। गुनि चौव श्रपाके च पण्डिता समदर्शिनः।। गुनि चौव श्रपाके च पण्डिता समदर्शिनः।।

इसका अर्थ है कि – ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता एवं चांडाल आदि को विद्वान लोग समान दृष्टि से देखते हैं।

इस वचन का अर्थ करते हुए यह कहना पड़ेगा कि विश्व कुटुंब की अवधारणा में समान अधिकार की कल्पना अमूर्त है। वैश्विक परिवार की कल्पना समानता के तत्व पर ही आधारित हैं। वस्तुतः समाज में अगर समता लानी है तो समरसता की आवश्यकता होती है। मनुष्य का मनोमिलन समरसता के बिना संभव नहीं है।

अर्थात शिक्षकों से यह आशा की जाती है कि वह समाज के सभी वर्गों तथा समुदाय के लोगों के प्रति समान भावना रखें तथा सभी परिस्थिति में समाज के साथ एक रस हो जाए। समाज के बदलते नजरिये, बदलते जीवन मूल्यों का प्रभाव शिक्षा जगत पर पड़ा है आज का शिक्षा जगत भी एक व्यावसायिक तन्त्र का रूप लेता जा रहा है।

आधुनिकीकरण, पाश्चात्यीकरण, तकनीकीकरण, वैश्वीकरण, निजीकरण आदि का भी शिक्षक जगत एवं शिक्षक के स्वरूप तथा भूमिका पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। इस निमित्त आधुनिक अध्यापकों की व्यावसायिक सोच एवं प्रतिबद्धता तथा उनकी सामाजिक समरसता आदि तथ्यों में भी बड़ा भारी परिवर्तन आया है।

डॉ. जितेन्द्र कुमार लोढ़ा ने अपने लेख 'सामाजिक समरसता की स्थापना में शांति शिक्षा की भूमिका व उत्तरदायित्व' में लिखा है कि समरसता सहित सहजीवन, पृथ्वी पर संस्कार युक्त – विकास की एक सर्वकालिक आवश्यकतापरक अवधारणा है, जिसका महत्व कभी भी समाप्त नहीं होगा। शिक्षा नैतिक विकास के साथ उन मूल्यों, द्रष्टिकोण और कौशलों के पोशण पर बल देती है, जो प्रकृति और मानव जगत के बीच सामजस्य बिठाने के लिए आवश्यक है। सामाजिक – न्याय, समानता एवं सामाजिक समरसता की स्थापना शांति–शिक्षा के महत्वपूर्ण घटक है।, इसीलिए श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन का निर्देशन करते हुए कहा है कि जो अपने आहार, विहार, में संयम रखता है और सभी स्थानों पर नियंत्रित रहता है, वही वास्तव में शांत कहलाता है। जब वह शांत है, तभी परिवार, समाज और विश्व को शांति दे सकता है। अशांत व्यक्ति का मन भटकता रहता है। उसके मन में दुविधा होती है और चंचल मन के साथ व्यक्ति किसी बात के लिए ठोस निर्णय नहीं ले पाता।

इसलिए शिक्षण न केवल आजीविका उपार्जन का अवसर प्रदान करता है बल्कि यह पुराने एवं नोबल व्यवसाय में शामिल किया जाता है। और शिक्षकों को राष्ट्र निर्माता भी कहा जाता है। परन्तु एक शिक्षक अपने बहुमूल्य कार्यों और जिम्मेदारियों का प्रदर्शन नहीं कर सकता, जबतक कि वह अपने व्यवसाय और व्यक्तित्व को अद्यतन नहीं कर लेता है। इसलिए ही अन्य व्यवसायों की तुलना में शिक्षण का सार्थक मूल्यांकन आवश्यक हो गया है। कुछ लोगों को शिक्षण व्यवसाय इसलिए भी अच्छा लगता है कि इसमें अन्य प्रकार की गतिविधियों पाठय सहगामी क्रियाएं की अधिक संभावना होती है। शिक्षण व्यवसाय ने राजस्थान में पिछले कई वर्शों में युवाओं को अपनी ओर आकर्षित किया है और बहुत से युवाओं ने शिक्षण को अपना व्यवसाय भी चुना है और आज एक शिक्षक के रूप में कार्य कर रहे हैं। आज भारत में निजी एवं सरकारी शिक्षण संस्थाओं की संख्या में तीव्र गति से वृद्धि होती जा रही है। इससे यह सिद्ध होता है कि युवाओं में शिक्षण व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति में विकास तो हुआ है। शिक्षण व्यवसाय में नौकरियों की संभावना भी बढ़ी है और अध्यापकों के वेतन में भी वृद्धि हुई है। शिक्षण व्यवसाय में कम घंटों के कार्य में जॉब सुरक्षा सुनिश्चित होती है। इसके साथ ही प्राईवेट टयूशन और कोचिंग संस्थानों में अतिरिक्त पैसा भी कमाया जा सकता है। व्यक्ति जिस स्थान पर कार्य करता है, वहां के अधिकारी कर्मचारी आदि में आपस में सौहार्दपूर्ण सामंजस्यता, समानता का माहौल नहीं हो तो वह उस व्यवसाय से संतुष्टि प्राप्त नहीं कर पाता है। किसी कार्य के सम्पादन से प्राप्त आय भी व्यवसाय रूचि की निर्धारक होती है। एक अध्यापक को विशेशज्ञ होना अति आवश्यक है वह चाहे–नर्सरी विद्यालय, प्राथमिक विद्यालय, मिडिल विद्यालय, उच्च विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय, संस्थान या विशेष विद्यालय स्तर का हो, इससे उसकी जॉब सुरक्षा और कुशलता में भी वृद्धि होती है, और उसकी व्यावसायिक प्रतिबद्धता के विकास की संभावना भी बढ़ जाती है। एक अध्यापक के लिए मूलभुत विशेशताओं का होना आवश्यक है जैसे धैर्य, दृढ़ निश्चयी, विद्यार्थियों के अनुसार ग्रहणशील, समरस भाव और खुश मिजाज हो। जिससे विद्यार्थी हमेशा उसे आदर्श के रूप में देखे, न की उससे डरे।

कार्य या व्यवसाय रूचि का न हो तो जीवन जीने के लिए पर्याप्त संतुष्टि नहीं होगी। इसी प्रकार भविष्य में उस व्यवसाय के माध्यम से प्राप्त होने वाले उन्नति के अवसरों की न्यूनतम और अधिकतम मात्रा भी व्यावसायिक रूचि का निर्धारण करती है। वर्तमान परिस्थितियों में अध्यापक अपने व्यवसाय के प्रति स्थानांतरण,

परिवार नियोजन, चुनाव तथा सर्वेक्षण आदि कर्तव्यों की अधिकता, तथा अधिक योग्यताधारी होते हुए भी निम्न कक्षाओं में अध्यापन करवाने की मजबूरी के कारण उनकी व्यवसायिक सोच तथा उनके कार्य स्तरों में बदलाव आया है।

शिक्षक छात्रों की ज्ञानात्मक, भावनात्मक तथा क्रियात्मक योग्यताओं का विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता है। जैसे – जैसे विद्यार्थी नवीन तथ्यों के बारे में सीखते जाते हैं, उनमें ज्ञान का विस्तार होता है, साथ ही समुचित भावनाओं, विचारों और अभिवृत्तियों को वे ग्रहण करते हैं जो समाज स्वीकृत और अपेक्षित हों। अभिव्यक्ति, क्षमता के साथ ही कौशलात्मक विकास भी उनमें होता है। शारीरिक विकास और मानसिक अनुभवजन्य प्रगति एवं स्तरोन्नयन दोनों सम्पन्न होने के कारण शिक्षण को एक विकासात्मक प्रक्रिया के रूप में मान्यता दी जाती है। इस कार्य हेतु ऐ सफल शिक्षक की आवश्यकता होती है। सफल शिक्षण का कार्य एक सफल शिक्षक ही करा सकता है। जो अपने व्यवसाय के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति वाला हो और व्यावसायिक रूप से प्रतिबद्ध हो।

निष्कर्ष

सरकारी–गैर–सरकारी अध्यापक–अध्यापिकाओं में अध्यापन कौशल सामान्य स्तर का पाया गया, अतः इस संदर्भ में उक्त परिकल्पना अस्वीकृत होती है। शहरी एवं ग्रामीण अध्यापकों के अध्यापन कौशल में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। मध्यमानों के आधार पर शहरी क्षेत्र के अध्यापकों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्र के अध्यापकों के मध्यमान कम है। अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ग्रामीण क्षेत्र के अध्यापकों की तुलना में शहरी क्षेत्र के अध्यापकों में अध्यापन का कौशल उच्च स्तर का होता है। इसी प्रकार शहरी एवं ग्रामीण अध्यापिकाओं के अध्यापन कौशल में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। मध्यमानों के आधार पर शहरी क्षेत्र की अध्यापिकाओं की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्र की अध्यापिकाओं के मध्यमान कम है। अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ग्रामीण क्षेत्र की अध्यापिकाओं की तुलना में शहरी क्षेत्र की अध्यापिकाओं में अध्यापन का कौशल उच्च स्तर का होता है। इसी प्रकार शहरी अध्यापक एवं शहरी अध्यापिकाओं के अध्यापन कौशल में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। मध्यमानों के आधार पर शहरी अध्यापकों की अपेक्षा शहरी अध्यापिकाओं के मध्यमान कम है। अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि शहरी अध्यापिकाओं की तुलना में शहरी अध्यापकों मे अध्यापन का कौशल उच्च स्तर का होता है।

सन्दर्भ

1. कुलश्रेष्ठ एस. पी. (2012) ''स्वतन्त्र भारत में शिक्षा का विकास'' आर्य बुक डिपो, 30, नाईवाला, करोल बाग, नई दिल्ली
2. एन. के. चौधरी (2014) ''शिक्षण एवं अधिगम के मनो सामाजिक आधार'', शिक्षा प्रकाशन जयपुर
3. प्रहलाद, एन. एन. (2015) ''प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति'', नन्द किशोर एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी,
4. सिंह, ए. आर. (2017) अनुसंधान विधियाँ'' द्वितीय संस्करण हरिप्रसाद भार्गव हाऊस आगरा,
5. खान, एस. (2015) ''उच्च शिक्षा मनोविज्ञान'' विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
6. मोरे, आरती (2014) ''भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ'', विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा